Chapter-3

तृतिय अध्याय

गीत-नवगीत के संदर्भ में विशिष्ट प्रधान तथा छान्दस रचनाओं का वैशिष्ट्य

गठन प्रक्रिया की दृष्टि से नवगीत छान्दस संरचना के अन्तर्गत स्वीकार्य है। उसका सम्पूर्ण वृत्त छान्दस अभियोजना के अन्तर्गत काव्यानुशासित मर्यादाओं के अनुरूप है। गीत का सृजन भी छान्दस अनुशासन के अन्तर्गत ही हुआ है और इस गठन प्रक्रिया के संदर्भ में गीत को नवगीत से बहुत अलग नहीं किया जा सकता, छान्दस संरचना के विषय में गीत और नवगीत एक रागात्मक तथा तुकान्त अनुशासन के अन्तर्गत संतुलित रचना वृत्त को स्वीकारने के लिए वाध्य हैं। यदि छान्दस अनुशासन की मर्यादा का निर्वहन गीतों में नहीं हो रहा है तो उस काव्य रचना को हम कुछ भी कहें, लेकिन गीत नहीं कह पायेंगे। नवगीत भी इसी क्रम में गीत की अनुवर्तनी नयी-धारा है, जो अपनी परम्परित आचार-संहिता के अनुकुल अग्रसर होती है। कहने का तात्पर्य यही है कि नवगीत गीत की ही विरासत जी रही ऐसी काव्य-विधा है जिसके मूल वृत्त का गठन छन्द, तुक और राग की त्रिवेणी से उदित हुआ है। गीत और नवगीत का निकटवर्ती स्वरूपगत सम्बन्ध भी है। परम्परित तथा रुढ़ शैली में सृजित गीतों की अतिश्रमसाध्य तथा पूर्वनिर्धारित छान्दस अनुकृति को नवगीत में ज्यों के त्यों रखने की वाध्यता नहीं है। इसलिए नवगीत की छन्द संयोजना पूर्व निर्धारित छान्दस अनुबंधन को ज्यों का त्यों स्वीकार करने के लिए भी वाध्य नहीं है।

नवगीत में जो छान्दस अन्तराल उपस्थित हुआ है वह उसके विशिष्ट स्वरुप को लेकर हुआ है।

वस्तुतः नवगीत की संरचना काव्यानुशासित आचार संहिता के अनुकूल होते हुए भी उसमें वृत्त-गत बदलाव की अत्यन्त सम्भावनाएँ सामने आई हैं।

नवगीत में छन्द का स्वरूप कवि की प्राकृत संरचनात्मक संचेतना पर आधारित होता है। विभिन्न कवियों ने अपनी-अपनी क्षमता एवं प्रतिभा के अनुरूप नवगीतों की छान्दस अभियोजना तय की है, जिनमें नवगीतकार के व्यक्तित्व की छाप भी स्पष्ट दिखाई देती है। नवगीतकारों की पंक्ति में ऐसे अनेक प्रातिभ हस्ताक्षर हैं जिन्होंने संरचनात्मक बदलाव अपने ढंग से तय किये हैं इनमे ओम प्रभाकर, नईम, कुमार रवीन्द्र, बुद्धिनाथ मिश्र, शांति सुमन, यशमालवीय विष्णु विराट के साथ-साथ देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' भी उच्चस्थ सोपान पर आरूढ़ हुए हैं। इन्होंने छन्द की पुरावर्तित धारा का आग्रह तोड़ते हुए छन्दों की नयी सृष्टि का संकल्प ग्रहण किया और अभिनव नव्यता के साथ बहुत ही सार्थक और विरल नवगीतों की संरचना की।

गीतों का वैशिष्ट्य

वैसे तो गीत और नवगीत की कोई निश्चित विभाजक रेखा समालोचकों ने तय नहीं की है, किन्तु फिर भी प्रत्येक नवगीतकार गीत की जमीन से ही उठकर नवगीत की फसले लहलहाता है। नवगीत के पार्श्व में गीत की बहुत बड़ी समृद्ध अभियोजना उर्वरा धरती की तरह काम करती है हालाकि कथ्य और प्रस्तुति में देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के गीत भी अपनी विरासत में प्रतिष्ठित हजारों गीतों की संपदा से अनुग्रहित अवश्य है। यह कहा जा सकता है कि उनके गीतों में पूर्ववर्ती गीतकारों का प्रकारान्तर से प्रभाव तो है फिर भी उनका हरेक गीत अपने मौलिक अस्मिता लिए हुए स्थापित हुआ है जैसा कि अन्यत्र स्पष्ट किया जा चुका है, यदि नवगीत के नव को विशेषण के रूप में परखें तो हर समय का अपने वर्तमान में लिखा हुआ गीत नवगीत ही होता है, किन्तु जब हम गीत और नवगीतों को अलग-अलग प्राचीरों में सीमांकित कर देते हैं, तब उनके अलग-अलग वैशिष्ट्य मुखर होकर सामने आते हैं। उनके एक गीत की वानगी देखिए-

होली के रंग भरे,
भूली सुधि-से उभरे
फागुनी अकाश तले रतनारे बादल !
दूर-दूर तक खेतों में
गंधाकुल रेतों में,
लहराता पवनकम्प-सरसों का आँचल !!
नीलम-नभ रश्मि-भरित
हेम प्रभ-हंस-त्वरित,
धरती की ओर मुड़े मानस कर सूना।[1]

इसी गीत में आगे कवि परम्परित प्रकृति के सौन्दर्य को भी अवगाहित करता है। जैसे -

"लिये किरन पिचकारी
ज्योति-वधू मतवारी,
कुसुमों को छेड़ रही ऊँधती दुपहरी।"[2]

यहाँ कवि मूल रुप से तो होली का ही वर्णन कर रहा है, किन्तु उसका यह वर्णन परम्परित गीत की अस्मिता से जुड़ा हुआ होकर भी प्रस्तुति के संदर्भ में अपनी अलग पहचान बनाता है। क्यों कि जब वह यह कहता है–

''पश्चिम में साँझ ढले
ढ़ोर गाँव ओर चले
नीरव–गोधूली में डूब रही बिन्ध्या।''[3]

जहाँ कवि अभिधा के अन्तर्गत ही लाक्षणिक एवं व्यंजक अर्थो का संकेत करता हुआ एक दूसरा संदेश भी देता है, जिसमें पशु तुल्य मनुष्यों की भीड़ पाश्चात्य प्रभाव से जुड़कर आगे बढ़ रही है और सम्पूर्ण जनपर एक धुंधलखे में अदृश हो रहा है।

गीतों की श्रृंखला में कवि ने कुछ सार्थक कथ्यों के साथ–साथ आम आदमी के सामने एक पूर्वाग्रही संवाद स्थापित किया है जिसमें उसके कथ्य का उद्देश्य स्पष्ट होता है।

पलकों की पंखुड़ियाँ में गीतकार कहता है कि–

''खोलो री स्वप्नमयी पलकों की पाँखुरियाँ।
छलक उठी पनघट पर गीतों की गागरियाँ।।
मेंघों का घूँघट पट
सरकारी तम की लट,
नभ पथ से उतर रही किरनों की किन्नरियाँ।
आँगन में खिली धूप,
बिखरा ज्यों जातरूप,
सिहर उठीं ऊष्मा से लजवन्ती वल्लरियाँ।''[4]

अंत में परम्परित गीतों की अनुवर्ती–धारा में आप्लावित कवि कहता है–

''गूँज उठीं मधुवन में कान्हा की बाँसुरियाँ।
खोलो री स्वप्नमयी पलकों की पाँखुरियाँ।
छलक उठीं पनघट पर गीतों की गागरियाँ।।''[5]

कवि देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के गीत संवेदना की गहरी अनुभूतियों से जुड़ी होने के कारण सार्वजनिक रुप से जब स्वीकार्य होते हैं वहीं इन गीतों में साधारणीकरण का वैशिष्ट्य उदित होता है।

इन्द्र जी के गीतों में वैविध्य है। होली के रंग हैं, दीपावली के रौनक हैं, वसंत का उल्लास है तो श्रावणी घटाओं की रससिक्त बरसातें भी हैं इनमें आत्मीय संबंधों का माधुर्य

भी है पर मानवीय धरातल से उठकर अपनी पहचान का उद्घोष भी है। यह रुप रंग इनके अनेक गीतों में देखे जा सकते हैं ,उनके कुछ विशिष्ट गीतों की भंगिमाएँ ध्यातव्य है।

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' जी ने इस गीत में स्मृति काल के विगत को बिम्बों-वस्तुओं आदि के माध्यम से पुनर्जीवित करते हैं, जो अचेतन गर्भ में पड़ी रहती हैं यही कारण है कि कवि इन स्मृति-बिम्बों को वर्तमान प्रतीति-बिन्दु पर लाकर उन्हें महत्व देता है। ये स्मृति-बिम्ब कवि के मानस मन को आन्दोलित करता है। पत्नी की याद में कवि का मन कह उठता है-

''पुछ गया गुलाल भाल से-
पर हृदय रंगा अभी तलक।
राजहंस जा छिपे कहीं
है उदास मौन मानसी।
कौन सी मलय पवन चली
मन्द गंध दूर जा बसी।।
झर गये प्रसून डाल से-
दो नयन रहे अभी छलक।''[6]

स्मृति कभी-कभी हृदय विदारक भी होती है कवि का मानस काल के परिदृश्य को अपने तरीके से इस गीत में अर्थ देता है, जो पत्नी के वियोग के संदर्भ में प्रकट होती है-

''पल हुए हजार साल से-
फिल मिली न वे नमित पलक।''[7]

भारतीय गाँव की मोहक छवि और समूचे लावण्य के साथ कवि नायिका को इस गीत में प्रस्तुत किया है। स्वस्थ प्रेम की अनुभूति ही उदात्त अभिव्यक्ति के रास्ते खोलती है-

''तैर रहीं लहरों पर सौरभ की अप्सरियाँ।
रोमांचित-दूर्वादल
वसुधा का हरितांचल
अमराई में गातीं पाटलपंखी परियाँ।
पीपल की छाँह भली,
अल साई राह चली,

छहर रही खेतों में धानों की चूनरियाँ।''[8]

कवि देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' का सृजन गीतात्मक तो हैं ही उसमें उतना वैविध्य भी है कि वह अपने विस्तृत वृत्त में गीत के अधिकांश कथ्य की दृष्टि से नवगीत का कलेवर स्पष्ट होता है इसी-तरह कवि आगे कहता है-

''वह दुकूल काँपता हुआ
बाहु ज्यों शिथिल मृणालिनी।
अधरों पर तैरती हँसी
पुरइन पर ओस की कनी।।''[10]

एक अन्य गीत प्यासी वस्ती में कवि का वैशिष्ट्य उभर कर सामने आता है जो गीत और नवगीत की संधिबेला की अवस्थिति का आभास कराता है। जैसे-

''मन-मृग ! मत और भर कुलाँचे।
वन-उपवन-गाँवों की शहरों की
कई बार नाप चुके दूरी।
आजीवन भागे जिसको पाने
मिली नहीं खोयी कस्तूरी।।
पीछे है शर-साधे आखेटक-
आगे है लपट भरी आँचे।।''[11]

यह विप्रलम्भ श्रृंगार का गीत है जिसमें वियोगजन्य परिताप की गहरी वेदना अन्तर्निहित है। इस तरह के गीतों का सृजन मैथिलीशरण गुप्त, जानकीवल्लभ शास्त्री तथा दिनकर की कृतियों में देखा जा सकता है।

मुख्य पंक्ति के आगे के बन्ध में अन्तर्वेदना जन्य जो अकुलाहट और छटपटाहट है, वह संवेदना के स्तर पर कवि की भावाभिव्यक्ति को पुष्ट करती है।

वैसे तो देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' नवगीत के सृजन में ही अपनी गंभीर पहचान व्यक्त करते हैं और नवगीतकार के ही रूप में सर्वाधिक प्रसिद्ध भी हैं, किन्तु गीत की विकास-यात्रा के सामायिक पड़ाव भी तो नवगीत ही है, तभी तो हम निराला से लेकर कुमार रवीन्द्र और रवीन्द्रभ्रमर तक के गीतों को नवगीत की संज्ञा देते हैं। यदि यह कहा जाय कि निराला के गीत गीत नहीं हैं नवगीत ही हैं तो उचित नहीं होगा या यह कहा जाय कि वे सभी नवगीत हैं, गीत नहीं है तो भी उचित नहीं होगा। विचार और सोच के वैविध्यपूर्ण पटल समय के साथ विस्तरण प्राप्त करते हैं। समाज से सीधे सरोकार रखने वाला कवि

सामयिक सोच के विस्तार से अलग नहीं रह सकता और यही कारण है कि निराला और रवीन्द्र भ्रमर की गीत संचेतना में भी एक स्पष्ट अंतराल है।

छायावादी गीतों और नवगीतों में माना कि कथ्य, सोच और प्रस्तुति का अन्तराल है कि नवगीत के पल्लवन की भूमिका में इन तमाम पूर्ववर्ती गीतों को नकारा भी नहीं जा सकता, समय के साथ-साथ जीवन मूल्यों में परिवर्तन आया है। सामाजिक आचार संहिताएँ बदली हैं, राजनैतिक स्थापनाओं में अन्तर आया है, इसका सीधा प्रभाव गीतकार की संचेतना पर पड़ता है।

आज वैश्विक बाजारवाद की भोगवादी संस्कृति में कविता प्रचार और प्रसार के माध्यमों से जब अपनी प्राचीरें छोड़ती है तो स्वाभाविक ही है कि कविता में वैश्विक सोच के आयाम भी संग्रहीत होते हैं। इससे कविता का अर्थ नहीं बदल जाता। इसी तरह देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के गीतों में वैचारिक बदलावों और सामयिक संचेतना का इतना वैविध्यपूर्ण स्पर्श है कि उसे गीत के अर्थ से जोड़कर नवगीत के विशेषण से अलग नहीं किया जा सकता । माखन लाल चतुर्वेदी, नवीन, रंग, नीरज के गीत भी इसी दृष्टि से सम्पूर्ण गीत हैं, किन्तु उन्हें नवगीत नहीं कहा जा सकता क्यों-कि विषयगत प्रस्तुति और कथ्य की सामयिक चेतना के साथ गीत की बदलती तस्वीर उनमें नहीं है। देवेन्द्र जी का एक गीत है-

''छूट गया पीछे वह सपनों का देश।''[12]

छायावादी कवि भी कहता है-

ले चल मुझे भुलावा देकर
मेरे माँझी धीरे-धीरे।

रमानाथ अवस्थी कहते हैं-

सपनों के गाँव सभी छूट गए
जब परदेश प्राण हो गए।

किन्तु इसी गीत के प्रस्तार में जब इन्द्र जी यह कहते हैं कि-

''दफ्तर से टी-हाउस तक फैले
मुर्दा सम्पर्कों के जाल
समाधान खोजती निगाहों में
डरे हुए झाँकते सबाल।''[13]

तो कथ्य की प्रासंगिकता और शब्दों का नवीन प्रयोग इसे गीत से उठाकर नवगीत की परिधि में ला खड़ा कर देता है। इस प्रकार 'इन्द्र' जी के गीतों में राग, छन्द, भाव, कथ्य का वैशिष्ट्य जब समग्र रुप से संयोजित होता है तो गीत और नवगीत की संधि-बेला में इसे अलग-अलग करते पढ़ना उचित नहीं लगता।

एक अन्य गीत मौन की उदासी में 'इन्द्र' जी कहते हैं-

''तन से तो बाँध लिया है तुमने,
पर मन को कैसे मैं समझाऊँ ?
अर्पित है मेरा पल-पल तुमको,
यादों को कैसे मैं-विसराऊँ ?''[14]

तो यह कथ्य वियोग शृंगार का विशुद्ध परम्परावादी गीत ही जान पड़ता है। देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के गीत का केनवास बहुत विस्तृत है, कुछ संग्रह तो मात्र गीतों की वृत्तात्मक संरचना पर ही आधारित है, किन्तु और अनेक काव्य संग्रह हैं, जो इन परम्परित गीतों से अलग-थलग देखे जा सकते हैं।

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' पर छायावादी गीतकारों का तथा उनके शिल्पगत वैचित्र्य का सीधा प्रभाव पड़ा है या कहा जा सकता है कि ऐसे गीत उन्होंने सायास प्रयत्न करके लिखे हैं। सुमित्रानंदन पंत के गीतों की तर्ज पर यह गीत ध्यातव्य है-

''ज्योत्सना का उर्मिल सितावरण।
नक्षत्र-माल हीरकाभरण।।
घर मन्द-मन्द श्लथकम्प चरण उन्मदना।
विद्युत के लघु नीरव नूपुर।
मिलनाभिलाष अन्तःस्मित उर।।
बिखरे किरणों से गन्धचिकुर विधुवदना।।''[15]

यदि पृथक रुप से इस प्रकार के गीतों को सामने रखा जाय तो रचनाकार के नाम पर सीधे पंत जी का ही नाम आएगा। वही शब्द जाल, अल्प प्रयोगी शब्दों के आरोपित प्रयोग तथा प्रकृति के विस्तृत परिवेश का चित्रण। इन उद्धरणों से यही स्पष्ट होता है कि इन्द्र जी के गीतों पर पूर्ववर्ती गीतकारों का सीधा प्रभाव पड़ा है तथा उन्होंने इससे बहुत कुछ ग्रहण भी किया है।

इस प्रकार कुछ अन्य गीत भी देखे जा सकते हैं-

''सावन का घर आँगन सूना कर बोली में-

चली गयी बादल की बेटी वह वरखा।
मेढ़ों पर महक उठी मेंहदी,
पुरवा की रच गयी हथेली।
बिखरी जो किरणों की हल्दी,
सरसों ने गालों पर झेली।।
रुई के धागों–सी धूप कातता जाड़ा–
हाथ लिये सोनाले सूरज का चरखा।।
काछी काछिन मिलकर तड़के,
तालों में तोड़ते सिंघाड़े।
पंडित जी के घर के लड़के,
रटते हैं गिनतियाँ पहाड़े।।
दादा की दाढ़ी से खेले शिशु गोदी में–
देख–देख दादी का बूढ़ा मन हरखा।।''[16]

गीत सघनतम आन्तरिक अनुभूतियों की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति है। गीत कब जन्मा? कहना कठिन है, किन्तु सरलतम शब्दों में कहें तो सृष्टि के उदय के साथ ही गीत ने जन्म लिया और जब तक सृष्टि रहेगी रहेगी, जीवन रहेगा, गीत जीवित रहेगा। समय एवं वैचारिक परिस्थितियों के अनुरूप गीत के रूप, स्वरूप, विषय और बिम्ब बदलते रहे हैं।

पिछले दशकों में व्यवस्था का क्रूर चरित्र निखर कर सामने आया है और अपराध राजनीति का जो अपावन गँठजोड़ सब पर हावी होता गया है, उसके फलस्वरूप हर संवेदनशील व्यक्ति अपने को असुरक्षित अनुभव कर रहा है तभी तो कवि देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' इस गीत में यह कहने के लिए बाध्य हो पड़ते हैं–

''जाने अनजाने में हमने यह भूल की
देखे सुख के सपने छाँह में बबूल की।
झूठे निकले सारे
आश्वासन,
व्यर्थ हुई साधना।
हिला नहीं प्रभुता का
सिंहासन,

तट पर हम खड़े-खड़े यादें बुनते रहे-
डूबे जलयानों के खण्डित मस्तूल की।
कविता कुछ काम नहीं
आ पायी,
पथरीले शोर में।
किरणों ने पर्व-कथा
दुहरायी,
हम सूखी पंखुरियाँ पथ पर चुनते रहे
साँसों में गंधाते वेणी के फूल की।''[17]

गीत से नवगीत तक की यात्रा कवि को व्यक्ति-चेतना के संस्कारों से साक्षात्कार कराती है, तो कही वह सामाजिक संवेदना को उभारकर सामने लाती है। इसमें व्यष्टि से समष्टि का एक अद्भुत तादात्म्य दिखाई पड़ता है। स्पष्ट है कि गीत मनुष्य की अंतर्वेदना को अभिव्यक्ति देने के रागात्मक माध्यम है। मानव-जीवन ही राग-बोध से जुड़ा है। इसीलिए गीत, लय, भाव-विचार छन्दों पर आधारित है। इनकी रूपबध परिणति ही गीत को संवेदनशील व बोधगम्य बनाने में सहायक है। जैसे-

''देने वाले तुमने मुझको क्या-क्या नहीं दिया
एक बूँद माँगी थी तुमने सिंधु उँड़ेल दिया।।''
मेरी भटकन ने तो तुमसे पथ ही पूछा था
आभारी हूँ तुम मंजिल तक साथ चले आये।
मैं करने व्यापार चला था ले काँकर-पाथर
तुमने रीती झोली में मणि मोती बिखराये।।
मैं कृतज्ञ हूँ बहुत, प्यार के धागे से तुमने
मेरे फटे हुए दामन को कितना नहीं सिया।।''[18]

गीत-विधा ने विभिन्न युग देखे हैं। उनका आकार-प्रकार परिवर्तनशील रहा है, किन्तु बदलती युगीन स्थितियों को गीत ने गाया है। रचनाकार अपने परिवेश से सदा प्रभावित रहा है। शून्य में रचना या रचनाकार अस्तित्वहीन होता है। दिनेश सिंह के शब्दों में - ''जीवन और परिवेश आपस में एक दूसरे को रचते सहेजते हैं।''

गीत-विधा के लिए दुरूहता सर्वथा अहितकारिणी ही होती है। डॉ. नामवर सिंह कहते हैं कि - ''सवाल गीतों को आधुनिक जीवन की जटिलता के अनुभूतियों को

ज्यादा से ज्यादा समेटकर सरल करने का है।'' गीतकार के मन में परिवेश के प्रति चैतन्य बोद से आत्म बोध से युग बोद की ओर उन्मुख किया है।

कवि देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' ने अपने इन प्रस्तुत गीतों में छन्दानुशासन का निष्ठापूर्वक पालन किया है। छंद तो गीत की कसौटी है। छन्दानुशासन के कारण शब्द–घर्षण से जो कर्णप्रिय ध्वनि निकलती है, वही नाद है, जिसमें गीतों की रसमयता सम्पन्न बनी रहती है। कवि मुखरित हो कह उठता है – ''मैं कृतज्ञ हूँ।''

''ओ रसवन्ती झील, तुम्हें मैं दोष नहीं देता
विषपायी उधरों ने अमृत जी भर यदि न पिया।
ओ मेरे शशि तुम सब के ही अम्बर में चमको
मेरे पारिजात तुम जग के नन्दन में महको।
हँस कर स्वागत करने वाले रो कर विदा न दो
ज्योतिर्मयी किरण तुम मन में ज्वाला–सी दहको।।
रीते हाथों आया था अब जाता भरा–भरा
तुमने सब कुछ देकर मुझसे कुछ भी नहीं लिया।''[19]

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के नवगीत जनगीतों के निकट हैं। जनवादी गीत की जमीन आम–आदमी के पैर के नींचे की जमीन है, यह उस टूटे हुए और हारे हुए सर्वहारा वर्ग की पीड़ा का गीत है, जिसमें नैराश्य है, टूटन है, थकावट है, प्रमाद है, नीरसता है, बोझिलता है, खीझ है, उदासीनता है, दर्द है, तकलीफ है, पीड़ा है, छटपटाहट है, आक्रोश है, आवेश है, समझदारी है और एक अथक लड़ाई की शुरुआत है। शीर्षक 'मौन की उदासी' में कवि 'इन्द्र' जी कितनी सहजता से कह उठते है–

''मैं तुमसे घृणा नहीं करती हूँ
पर तुमको प्यार भी न दे पायी।
तुमने तो दे डाला सागर ही
स्वाँति बूँद पाने मैं ललचायी।।
मैंने कब विदा नहीं तुम्हें किया
भारी मन, अनचाहे रो–रो कर ?
लेकिन कब स्वागत भी किया नहीं
अश्रुत पगध्वनियों का खुश होकर ??
बेगाना कभी तुम्हें नहीं कहा

पर न तुम्हें मान सकी मैं अपना।
पाँखों से संग उड़ी तुम्हारे में
आँखों में भटका कोई सपना।।
तुमने तो अंचल यह भर डाला
शबनम से, फूलों से, तारों से।
मैं खुद ही सान्ध्यदीपवेला में
कर बैठी रिश्ता अंगारों से।।
रानी हूँ नीड़ की तुम्हारे मैं
अनमापे अम्बर की दासी भी।
ओ मेरे गीतो के सम्मोहन
सहने दो मौन की उदासी भी।।''[20]

छायावादी गीतों का सृजनवैभव मूलतः भारतीय कम और पाश्चात्य 'लिरिक' परम्परा की अनुकृति अधिक था। नवगीत अपने जमीन पर खड़ा होकर उसकी गन्ध को गुनगुनाता हुआ छायावादी रोमानियत और लिजलिजेपन से हटकर यथार्थ को उपस्थित करता है। मूलतः गीत होते हुए भी नवगीत छायावादी गीत-धारा से स्पष्ट पार्थक्य बनाये हुए है। इसी पार्थक्य और अपनी विशिष्ट प्रकृति के कारण ही वह 'नवगीत' है। छायावादी गीतों का वैशिष्ट्य और अभिजात्य नवगीत में सहज ही उन्मुख हुआ है। प्रसाद के गीतों में अतीत के वैभव-विलास के गान और हृदय की धड़कनों का अंकन हुआ है। महादेवी वर्मा के गीतों में वेदना का सातव्य अमूर्त के प्रति समर्पण और सांस्कृतिक सूक्ष्म चिन्तन की अभिव्यक्ति हुई तथा पंत के गीत शब्द की चारुता और नाद सौन्दर्य के लिए जाने जाते हैं। भाषा के स्तर पर निराला के गीतों में भी शब्दों का आधुनिक संस्कारगत विन्यास दिखाई पड़ता है। कवि देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के स्वभाव में निराला का फक्कड़पन और बाबा नागार्जुन की निश्छलता दोनों ही समाई हुई है।

इन्द्र जी ने गीत अपनी शब्द-योजना, प्रतीकों और बिम्बों से रचना-शिल्प को नया आयाम प्रदान किया है। मानव-जीवन के विविध परिवेशी बिम्बों को बड़ी सावधानी से ललित, लोककंठी और मर्मस्पर्शी व्यंजना में सँवारा गया है-जैसे-

''बाँहों में भर लिया दिशाओं ने
सारा आकाश,
चुभते रोमांचों-से दूबों की

साँसों में तीर।
बिखर गया पल भर में सयम का
संचित-विश्वास,
नयनों की डोरी पर काँप गयी
कोई तस्वीर।।''[21]

गीतकार अपने सम्पूर्ण परिवेश के प्रति सजग तथा अस्तित्व के प्रति व्यापक रुप से सतर्क है। इन्हीं के शब्दों में-

''सिन्दूरी मेघों के घूँघट से
झाँक गया कौन,
ऊँधती मुँडेरों के घेरों पर
मँडराते काग।।
चन्दनी समीरो को परस मयी
कस्तूरी गन्ध
कचनारी छाँहों के फैल गये
धुँधले आयाम।
झीलों में उर्मिल जलपरियों के
मुक्त केशबन्ध,
लौट गयी एक लहर रेती पर
लिख अपना नाम।।''[22]

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के काव्य-फलक बहुत विस्तृत है। इसलिए उनकी भाषा और शैली को संस्कृतनिष्ठ, बिम्बबहुल और चित्रात्मक रुप में परिभाषित कर देना एकांगी होगा। उनके काव्य-संग्रहों में सैकड़ों गीत-कविताएँ हैं, जो न केवल मानवीय मूल्यों से जुड़ी है बल्कि सामाजिक सरोकारों से अनुप्राणित विरोध और तिरस्कार स्वर को मुखरित करती है। यहाँ एक व्यक्ति है जो महानगर में रहकर भी महानगर का नहीं है। वह इस महानगरीय संस्कृति से भयभीत नहीं है, किन्तु वैयक्तिक और सामाजिक दोनों स्वरों पर वह उसमें शरीक भी नहीं है। भले ही राजधानी में प्रवेश किया, लेकिन शाही दरवाजे, अर्थात प्रवेश-द्वार पर ही ठिठक कर रहे गये। क्योंकि राजधानी के केन्द्र, राजसत्ता के दरबार में जाने के लिए कोर्निश बजानी पड़ती है, जी-हुजूरी करनी पड़ती है, जो इनके

स्वभाव से बिल्कुल भिन्न है, इसलिए राजधानी में रहकर भी राजदरबार से दूर रहे। प्रस्तुत हूँ। गीत में अपनी इसी बात को स्वीकारा है–

"जो कुछ हूँ, जैसा हूँ, प्रस्तुत हूँ
मौलिक हूँ, अनुकरण नहीं हूँ।
इस जीवित क्षण का मैं साक्षी हूँ
मैं कल का संस्मरण नहीं हूँ।।
मुझ से यह आपको शिकायत है
धारा के संग मैं न बह पाया।
भले नहीं डूबा–उतराया हूँ
किन्तु नहीं मैं तटस्थ रह पाया ?
सम्भव है चलने में भटका हूँ–
अनुगामी आचरण नहीं हूँ।
सम्पर्कों के कन्धों पर चढ़ कर
विजय केतु–सा मैं कब लहराया ?
दरवाजे पर दस्तक दी मैंने
खिड़की की राह से नहीं आया।।
भाषातीत भावों का स्पन्दन हूँ
सूत्रबद्ध व्याकरण नहीं हूँ।
ऊसर में बहता गंगाजल हूँ
पोखर के पानी–सा टिका नहीं।
स्वीकृति के पीछे कब ललचाया
कॉफी के प्यालों पर बिका नहीं।।
टके–टके फुट–पाथों पर मिलता
मैं सस्ता संस्करण नहीं हूँ।
जो कुछ हूँ, जैसा हूँ, प्रस्तुत हूँ
मौलिक हूँ, अनुकरण नहीं हूँ।।"[23]

'गीत' विधा में कवि अपने मन की भावनाओं को सुख–दुखात्मक अनुभूतियों एवं वैयक्तिक जीवन की अनुभूतियों का प्रकाशन स्वतंत्रतापूर्वक कर सकता था। इस विधा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि समाज के लोगों द्वारा वंश परम्परागत रूप में

कंठस्थ कर के गाया जाता था और आज भी प्रयोगशील है। इस तरह लोकगीतों और साहित्यिक गीतों की परम्परा लोककष्ठ में ही हजारों वर्षों तक जीवित रहा करती थी। किसी अन्य साहित्यिक विधा में गीत-विधा के समान अक्षुण्ण जीवनी शक्ति नहीं है।

गीतकार की सबसे बड़ी चिन्ता संस्कृति के निरन्तर ह्रास की है। अधिसंख्य गीतों में इनकी इसी पीड़ा का परिपाक हुआ है। ऐसे में एक संवेदनशील रचनाकार की रचनाओं में निराशा के स्वरों को वाणी मिलना भी स्वभाविक है। निराशा की भावना को अभिव्यक्ति देते हुए कहते हैं-

''ओ मेरी अपनी ही परछाई-
आखिर में तुमने भी छोड़ दिया।
अथ से इति तक खोजा जीवन में
कोई भी मिला नहीं हमें सगा।
जितना विश्वास किया जब जिस पर
उतना ही तब उसने और ठगा।।
तुमने भी ममता के धागे को-
पल में झटका देकर तोड़ दिया।
कल तक जो सुख-दुख के साथी थे
आज वही लगते एँठे-एँठे।
राम-राम तक जिनसे नहीं रही-
तुम उनकी श्रेणी में जा बैठे।''[24]

गीतकार को याद आ रही है अपने स्वर्णिम आनन्द का उद्रेक करने वाले विगत की यादें। उसके सपने टूट चुके हैं। देखिए गीतकार स्वयं ये कहने के लिए विवश है-

''आँधी तो गुजर गयी किसी तरह
और शेष उम्र रह गयी आधी।
चाहों आरोपों से मुक्त करो
चाहों तो ठहराओं अपराधी।।''[25]

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' ने अपने काव्य-लेखन के सम्बन्ध में कहा है- ''जहाँ तक गीत, नवगीत लेखन का प्रश्न है, मैंने अपनी परम्परा की सुदृढ़ भूमि पर खड़े रह कर सुहर क्षितिजों तक अपनी सर्जना को आयामित होने का अवकाश दिया है।'' अपनी रचनाधर्मिता के बारे में बड़ी बेबाकी के साथ वे कहते हैं-जैसे हर व्यक्ति अपने वर्तमान

की पीठ पर अतीत की स्मृतियों की सुख–दुःख भरी गठरी को बड़े नेह–छोह के साथ वहन करता हुआ जीवन के सम–विषम पथ पर अग्रसर रहता है। वैसे तो मैं भी अपनी उस तत्कालीन लय–सर्जना से आज भी मोह विष्ट हूँ। वे गीत (पचास वर्ष पूर्व लिखे गये) ऐसी छन्दमयी, लयवती सर्जना के सोपान हैं, जिनके माध्यम से मेरी शब्द–साधना नवगीत के शिखरों तक आरोहित हुई है। प्रगतिवाद, प्रयोगवाद काव्य धाराओं में जो कुछ स्पृहणीय और वरेण्य था उसे मेरे गीतों नवगीतों ने आत्मसात किया ऐसी मेरी रचनाधर्मिता ने निःसंकोच स्वीकार किया है।''

गीत अपनी आरंभिक अवस्था में एक ओर रूमानियत लिये हुए था, वहीं दूसरी ओर आध्यात्मिक, भावप्रणयाभिव्यक्ति। दोनों का मध्य बिन्दु प्रकृति है। वर्षानुभूति की एक शाम गीत में इस परम्परा की समग्रता को अंकित करते इन्द्र जी दिखाई देते हैं–

''फिर किसी के
घने काले कुन्तलों सी
घिर रही उन्मत
हृदय के कुंज वन में
आज यह बरसात वाली शाम।
पारिजातों की विरल परछाइयों में
राह भूले ऐन्द्रजालिक की भटकती मोहिनी–सी
अस्तमित रवि की
सुनहरी किरन उलझी
फिर अरूप–अनाम।।
क्षितिज की गोलाइयों पर
उभर आये
कुहासे की कञ्चुकी से झाकते ये
पवनवाही नील कंठ कपोत ?
चेतना की अलम मौन उपत्यका में
जग उठे अज्ञात
सुधियों के चपल खद्योत।।''[26]

इन्द्र जी के गीतों में अतृप्त अंजलियों में जाने–अनजाने संस्कृति के मेदुर–मन्दार समय–समय पर अपने अनगढ़ रंगों और रूपछायाओं की सम्मोहिनी वर्षा करते रहे हैं।

गीतों की सम्प्रेषण बनाने की कांक्षा से कतिपय भाषिक-आविष्कार किये, वहाँ अपनी सर्जकीय-चेतना के नाम पर आन्दोलित संस्कृति के उस प्रसून को भी सुरक्षित रखा जिसने अपनी अस्मिता को पुराख्यान, पुराप्रतीक और पुराबिम्बों के रिक्थ से सार्थक किया है।

ग्रामीण जीवन जिसके बहुआयामी अनुभव और संस्कार 'इन्द्र' जी की चेतना में बद्धमूल है गाँव के रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, सहज मानवीयता, एक निश्छल भावुकता, एक सीधे-सादे आदमी की व्यापक समझ, अदम्य आशावाद, किन्तु इस सबके बीच विषाद का नीला तन्तु जो अविभाज्य रुप से उस व्यक्ति की मानसिकता में गुथा रहता है। इस गीत में नये प्रयोग द्रष्टव्य है- बचपन और कैशोर्य का गाँव छूटकर कभी नहीं छूटता।-

"कहाँ गये दही-माध वाले दिन ?
कहाँ गये दूध-छाछ वाले दिन ?
सड़कों पर भटक गये बचपन के गलियारे
साँसों से चिपटी नागिन-सी मायापुरी
सूर्यास्तों वाले उस सेंदुरी सरोवर में
लहरों पर छुट गयी किरणों की बाँसुरी
स्वप्न हुई गायत्री ऊषाएँ
कहाँ गये फूल-गाछ वाले दिन
यह कैसा अनचाही भीड़ों से समझौता
रिश्तों से जुड़ना या किश्तों में टूटना
नहीं रहे अब कदम्ब छाँहों वाले नाते
मुरली की मनुहारे, राधा का रूठना
धूआँ हुए सँझवाती के दीये
कहा गये वे कटाछ वाले दिन ?"[27]

संस्कृतियों के नन्दन में जब-जब सम्यताओं का जंगल उगा करते हैं, तब-तब मानवीय मूल्यों का जैसा ह्रास और विघटन होता है। वैसा सृष्टि का सहज मानव प्रक्रिया के दौरान नहीं। जब मानव मूल्यों पर आघात होता है तब चेतना का प्रवाह भी वामपन्थी हो जाया करता है, जिसके फलस्वरुप हमारे भीतर निषेध का नाशकारी वासुकि अपने असंख्य फणों से गरल के फुत्कारपूर्ण स्फीत फेन के अग्निल-समुद्र का उद्र वमन करता है और उस फेन के पिघलते बहते लम्हों में हमारी लक्षाधिक वर्षों की साधना के सुगन्धित प्रसूनों की एक-एक पंखड़ी चोट खाकर चटक उठती है।

कवि स्वयं कहता है कि वह परम्पराओं को तोड़ रहा है। जैसे–

''हाँ, हमने गीतके स्वयंवर में

तोड़ी है प्रत्यंचा छन्द के धनुष को।''[28]

शीर्षक 'कनुप्रिया संध्या की पुतली' में कवि मानवीय भावना से प्रेरित होकर यह कहने के लिए विवश हो जाता है–

''बादल तो जा बरसे विष–वृक्षों पर

बे–मौसम मुरझाया यह चन्दन वन।

पथ से गुजरे रथ के पहिये की

साँवली लकीरों–सा सूनापन

कनुप्रिया सन्ध्या की पुतली में

आँज गया टूटता इकहरापन

फूलों की घाटी में सन्नाटा

पर्वत पर बजती है बाँसुरी

आँधी के पैरों से बँधी हुई

यह उदास पाटल की पाँखुरी

मथुरा के नभ पर घनश्याम घिरे हैं

जीवन को तरस रहा मन–वृन्दावन।''[29]

राम गोपाल सिंह चौहान ने कवि देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' को आधुनिक कविता की विशिष्ट अन्तर्धारा गीतकाव्य के प्रतिनिधि कवि के रुप में स्थापित किया है। उनके शब्दों में – ''इन गीतों में प्रकृति के सहज संवेदनीय चित्रण के साथ–साथ संगीत, चित्रमयता तथा लोकजीवन के चित्रण की विशेषता द्रष्टव्य है। नाद, सौन्दर्य, वर्ण, योजना और कल्पना की रंगमयी विविध छटायें भी इनके गीतों में स्वाभाविक रुप से चित्रित है। उदाहरण स्वरुप–

साथ–साथ बजते हैं

दोनों इस गीत में

शोर और सन्नाटा।

आधा गीत गोरा है, आधा साँवला

आधा है संवेदन, आधा भर है काला

पंख लगाकर उड़ता

चुभता बन काँटा।
किसने यह पलकों से नींद में छुआ
रात गए, महुए-सा ताल पर चुआ
उमड़ा तो ज्वार बना
उतरा तो भाटा।
नदिया के आंचर का फूल यही गूंगा
परबत की मुंदरी में जड़ा हुआ मूंगा
पीठ पर धूँधलके की
किरनों की साँटा।''[30]

कवि देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' जी स्वयं कहते हैं– ''नागर और आञ्चलिक नवगीतों की रचना से हटकर सांस्कृतिक नवगीत लेखन की दिशा में मेरा भी कुछ योगदान रहा है। जिस प्रकार प्रसादोत्तर लेखकों और कवियों में मोहन 'राकेश', धर्मवीर 'भारती', नरेश मेहता, कुँअर नारायण और जगदीश गुप्त आदि ने अपने नाटकों काव्य-रूपकों और खण्डकाव्यों में नये-नये सांस्कृतिक प्रयोग किये हैं। उसी प्रकार मैंने भी विगत वीस वर्षों में ऐसे शताधिक गीतों की रचना की है जो अपनी विषय-वस्तु और संवेदना में नये होने के साथ ही साथ देश के सांस्कृति परिवेश से जुड़े हैं।'' संभव है कविता की ऊपर से परख और पड़ताल करने वाले इनके गीतों को ऐतिहासिक नवगीत कहना चाहें, किन्तु ऐसा कहना भ्रामक ही होगा। क्योंकि ऐतिहासिक घटना अथवा पात्र विशेष या विगत किसी के निश्चित देशकालगत परिवेश पर दृष्टि केन्द्रित किये बिना ऐतिहासिक नवगीत नही लिखा जा सकता। इन गीतों की रचनात्मक प्रतिश्रुति इस प्रक्रिया से पृथक् ही रही है। जब भी ये गीत लिखे गये, इनकी दृष्टि तब-तब उसमें आये पात्रों और घटनाओं को छूती अपने समकालीन परिवेश की भूमि पर जाकर टिक गयी–

''अब भी हम याद तुम्हें करते हैं
मीत, नहीं हम तुमसे रुठे हैं।
न तो हम परन्तप हैं
नही तुम सुयोधन
गूँगे वीरानों के
हम है सम्बोधन
आचार्यों की अन्धी श्रद्धा की

वेदी पर हम कटे अँगूठे हैं।
　　　　हमने कब चाहा था
　　　　　　　　ठने महा–भारत
　　　　हमने कब गढ़ी यहाँ
　　　　　　　　लाख की इमारत
पूछों तुम अपने आईनों में
हम कितने सच्चे हैं, झूठे हैं।"[31]

नवगीत

प्रकृति परिवर्तन शील है अर्थात् परिवर्तन प्रकृति का नियम है। नये और पुराने पुराने और नये परस्पर अपने राह पर सदैव चलते रहे हैं। तदन्तर क्रमशः पुराना पीछे छूट जाता है और नया अपनी भूमिका निभाने लगता है। प्रायः ऐसा भी होता है कि पुराना अस्तित्व में होते हुए भी महत्वहीन होकर रह जाता है। काव्य–धारा में प्रवृत्तिगत परिवर्तन आकस्मिक नहीं होता, बल्कि लम्बी अवधि तक युग और सामाजिक परिस्थिति तथा ऐतिहासिक आग्रह के परिणाम–स्वरूप विशेष साँचे में ढलकर होता है। परम्परा से पृथक् नये साँचे में तात्कालीन समय समाज की अभिव्यक्ति साहित्येतिहास में नवीन अमिधा ग्रहण करती है। इस अमिधा में रचनागत प्रवृत्तियाँ विद्यमान होती हैं। कविता अपने मूल सरोकार 'सामाजिक चेतना' की उत्प्रेरणा को सम्पूर्णता प्रदान करती हुई अपने व्यक्तित्व को समयानुसार बदलती रही हैं। रचना व्यक्तित्व का यह बदलाव ही प्रवृत्ति के आधार पर छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, व्यक्तिवादी स्वच्छन्दतावाद तथा 'नयी कविता' संज्ञाओं से परिभाषित होता रहा है। नवगीत इसी प्रक्रिया की नवीनतम कड़ी है।

आत्मानुभूति, रागात्मकता, सहजता, संगीतात्मकता, संक्षिप्तता एवं प्रभावान्विति व तरलीकृत शैली गीत के तत्व हैं। नवगीत ने एक ओर तत्व निर्धारण की इस रूढ़ि को अस्वीकार किया है तो दूसरी ओर उपर्युक्त तत्वों में से जिन्हें ग्रहण किया है उन्हें नया एवं परिवर्तित सन्दर्भ प्रदान किया है। नवगीत ने ऐसा करके कुछ अनुचित नहीं किया है। नवगीत ने निर्धारित क्षेत्र की परिभाषा को निश्चय ही तोड़ा है और उसे शिल्पगत आयाम प्रदान किया है। नवगीत ने ऐसा करके कुछ अनुचित नहीं किया है। नवगीत ने निर्धारित क्षेत्र की परिभाषा की निश्चय ही तोड़ा है और उसे शिल्पगत आयाम प्रदान किया है। इस दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन 'आत्मानुभूति' एवं 'वैयक्तिकता' को लेकर हुआ

है। समीक्षा शास्त्रीय शैली में आत्मानुभूति को गीत का आधारभूत तत्व माना गया है। नवगीत में वस्तुपरकता, व्यंग्य एवं यथार्थ के आग्रह को पाकर एक संदेह यह उभरा है कि नवगीत 'आत्मानुभूति से एकदम शून्य है, किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि नवगीत में उसका स्वरूप पूर्णतः परिवर्तित हो चुका है। नवगीत ने जीवन की व्यापक अनुभूतियों का काव्य-विषय बनाया है। साथ ही मैं के घेरे को तोड़कर उसे 'हम' तक विस्तार देने का भरसक प्रयत्न किया है।

समष्टि के साथ नवगीत का तादात्म्य बौद्धिक न होकर अनुभूति-जन्य है, यही तथ्य नवगीत को शिल्पगत नवीन आयाम देता है। नवगीत स्थिति का द्रष्टा मात्र नहीं है, भोक्ता भी रहा है, इसी कारण नवगीत में व्यक्त अनुभूति उसकी अपनी भी है और समष्टि की भी। समष्टि चेतना की अभिव्यक्ति इसमें बनावटी न होकर कलात्मक है।

कवि देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' नवगीत आन्दोलन के पुरोधा उसके ध्वजावाही शीर्ष-पुरुष है। पिछले कई दशकों से नवगीत की स्थापना-उसकी महत्ता और साम्प्रतिकता की लड़ाई लड़ रहे हैं। नवगीत के विकास में 'इन्द्र' जी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इन्द्र जी का पहला नवगीत संग्रह 'पथरीले शोर में' सन् 1972 में प्रकाशित हुआ था। तब से लेकर अब-तक 'पंखकटी महराबें', 'कुहरे की प्रत्यञ्चा', 'चुप्पियों की पैजनी', 'दिन पाटलिपुत्र हुए', 'आँखों में रेत प्यास', 'अनन्तिमा', 'हम शहर में लापता हैं', 'घाटी में उतरेगा कौन', 'पहनी है चूड़ियाँ नदी ने' नामक नवगीत संग्रहों के अविराम प्रकाशन के आधार पर कहा जा सकता है कि उनकी गीत-यात्रा निरन्तर सर्जना की भूमिका पर अपने अमिट चरण चिन्ह को छोड़ती चली आ रही है।

इन्द्र जी के पास अति समृद्ध बिम्ब-निर्माण-क्षमता एवं एक विशाल अनुभव सम्पदा है। उनके बिम्बों में जितनी विविधता है, उतनी ही पारिवारिकता भी। वह लफ्जों की रूहों में उतरकर संसार के गहन पीड़ा से रची-बुनी इस दुनिया को स्नेह से भींगी आत्मीयता का एहसास कराते हैं। परिवार के टूटते संवादों की चिंता का विकल कारण भी बनते हैं। उनके भीतर चलने वाले युद्ध के मुक्ति प्रसंग की गाथा भी सुनाते हैं। यहाँ प्रकृति को न केवल प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति ही दिया गया है बल्कि प्रकृति की घटनाओं, दृश्यों एवं मौसम के परिवर्तन को तात्विक रूप में अपनी चेतना और युगबोध के साथ मिलाकर एक साथ कई आयामों में उसे व्यक्त भी किया गया है-

''एक-एक कर उदास गर्मी के
सारे दिन गुजर गये।

P/Th
11459
SMT. HANSA MEHTA LIBRARY

सिमट गयी हरित नम्र छाया
आकाशी देवदारु
आरण्यक-खिरनी की
खोज रही विरद-जलद-माया
प्यासी आँखें, सूखे
मरुस्थल में हिरनी की।।
पात-पात फूल-फूल आँधी में
अमलतास बिखर गये।
मटमैले क्षितिजों के पट पर
थकी चील आँक रही
बैजनी उड़ाने।
लहरों के तीर सिन्धु-तट पर
फैंक-फैंक रीत गयीं
नदी की कमानें।।
मोती वाले रेशम-आँचल में
सीप-शंख उभर गये।
सूली पर चढ़ गया मसीहां
अस्ताचल पर सलीब
टँगा हुआ किरनों का।
झुलस गया कंठ का पपीहा
फिरा नहीं सध्या को
मेघपर्व घिरनों का।।
पूरब से यक्षदूत आये पर
बिन बरसे छितर गये।''[32]

इनका मानना है कि आत्मदान के अभाव में रचना की सर्जना संभव नहीं है। हम देखते है कि अस्सी के बाद के नवगीत पहले नवगीतों की अपेक्षा कई गुना गुण लेकर आगे बढ़े हैं कवि बाद की कविताओं (नवगीतों) में जनता के जीवन से अधिक जुड़ा है। शायद यहाँ से नवगीत ने अपनी अलग पहचान बनायी है। 'इति रेवा खण्डे' में आम-आदमी जिनसे परेशान है, उनका चित्रण बखूबी किया गया है-

"दिल्ली के नेता जी
काशी के पण्डे।
इनके अपने-अपने टोपी और झण्डे।।
हाथों में लेकर ये फटे हुए छाते
धूप और बारिश में हमको नहलाते
मन में इनके कटुता, मधु भीगी वाणी
इन सबने सीखे
ठगने के हथकण्डे।
है तटस्थ, पर रचते व्यूह जाति-पाँति के
मंचों पर बुनते भ्रम-जाल भाँति-भाँति के
साँस-साँस इनकी है जन-पद-कल्याणी
पीठों से चिपके ये
बन गोली-गण्डे।"[33]

मन के अगोचर और अमूर्त भावों को मूर्त करने का उपकरण बिम्ब है। बिम्ब-व्यापार कवि की कारयित्री प्रतिभा की उपज है। ये बिम्बों में सौन्दर्य की ताजगी घरेलू रिश्तों का अपनापन और समकालीन परिवेश, रोमानी महक सम्बन्धी समग्र भावचित्रों के संश्लिष्ट रूप प्रस्तुत करने में सक्षम हैं। बिम्बों की दृष्टि से निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है-

"तुम कि जैसे
क्षीर-सागर में
सद्यस्नाता लयवती पूनम
छेड़ती मरु के
दिगन्तों में
शबनमी अभिसार की सरगम
मौन के अभिशप्त आखर मैं
रागिनी स्वरपंखिनी हो तुम।"[34]

"पेड़ों के माथे पर
चिपके हैं धूप के ठिठौने।"[35]

"दूर-दूर तक कोई
नदी नहीं दिखती है
हिरनों की आँखों में
रेत प्यास लिखती है।"[36]

"सूरज ने
कलियों पर मारी
सात रंग वाली पिचकारी।"[37]

डॉ. मीनू खनेजा श्री देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' की नवगीत-यात्रा में कहती हैं-दिन पाटलिपुत्र हुए रचना के मिथकीय चेतना का दस्तावेज है। आधुनिक रचनाकार किसी संकट-परिस्थिति और विसंगति आदि की प्रस्तावना रचना के धरातल पर करता है, तो यह सम्यता के ऐतिहासिक विकासक्रम में मानवीय प्रश्नों के चक्रव्यूह से जूझता हुआ प्राचीन घटनाओं और पात्रों को नया मुहावरा प्रदान कर सर्जकीय क्षमता का नया क्षितिज खोलता है। जीवन के खण्डित रथचक्र को कन्धे पर उठाए हुए स्थितियों रुपी महारथियों के समक्ष आज का मध्य-वर्गीय व्यक्ति अपनी कुण्ठा और निराशा पर हसने के लिए लाचार है। देखिए लाचारी का एक दृश्य-

"खण्डित रथचक्रों की डोर पर
कुण्ठित शर साधे हम
        व्यूह में धँसे
सात महारथियों के सामने
        अपनी लाचारी पर
        हम स्वयं हँसे।"[39]

यह विधि की विडम्बना ही कहा जायेगा कि मनुष्य जीवन रूपी मरुयात्रा में जिस उपलब्धि के लिए वह संघर्षरत रहता है विजय की अंतिम क्षण में वह उसे वंचित रह जाता है-

"जब-जब भी विजय-पर्व नियराता
कीचड़ में धँस जाता रथ का पहिया।"[40]

मानवीय-जीवन के संत्रास और अन्तर्द्वन्दके बीच जीता हुआ कवि अपने कटु अनुभवों-आशंका, अविश्वास, भय, संशय, छल फरेब को स्वर देते हुए समाज के भावनात्मक संबंधों पर कुठाराघात करते हुए अपना स्वर बुलन्द करता है जीवन मूल्यों के सशक्त दस्तावेज के रूप में निम्नलिखित नवगीत द्रष्टव्य है-

"मेरी छाया मुझ से डरती है
मैं अपनी छाया से डरता हूँ।
आशंका, अविश्वास, भय, संशय
पग-पग पर दुर्घटना, छल
वर्षा, बाढ़ें, टूटे इन्द्रधनुष,
ठौर-ठौर बिजली, बादल
इन सबकी भीड़-भीड़ मुझमें है
मैं भी इस भीड़ से गुजरता हूँ।"[41]

छायावादी कवियों की तरह देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' भी भावुकता की दृष्टि से नारी सौन्दर्य को वखूबी गढ़ा है। नारी को यहाँ प्रेयसी के रूप में चित्रित किया गया है। इस नवगीत में कवि प्रेयसी की प्रणय-कथा और सौंदर्य समग्र प्रभाव की व्यंजना करता है। सौन्दर्य और प्रेम का सम्बन्ध युगों-युगों से चला आ रहा है। कवि की पारखी दृष्टि प्रेम और सौन्दर्य के आकर्षक-समुद्र में डूब-कर कल्पना की मोती चुन लेती है। इसे आप निम्निलिखित नवगीत में देख सकते हैं-

"चम्पक-सी गोरी अँगड़ाई
शेफाली तेरी परछाई
सपनों में जब तू मुस्काई
बाहों में
तुझे भर लिया है।
रूप और नेह ने परस्पर
जब-जब भी रचा है स्वयंवर
हमने सबकी नजर बचाकर
उत्सव से
तुझे हर लिया है।"[42]

अतीत की स्मृतियों में जाकर 'इन्द्र' जी का विरही मन पत्नी के वियोग में ऐसे तड़प रहा है जैसे–जल बिन मछली। सुख–दुःख की सहभागिनी जीवन भर साथ निभाने वाली, जो आज कवि को जीवन–सागर में अकेले छोड़ चली गयी है। इन्द्र जी अपनी व्यक्तिगत पीड़ा तथा वियोग की उद्विग्नता को इस नवगीत में व्यक्त करने में सफल सिद्ध हुए हैं–

''ओ प्रवासी
विजन–वासी
जो न लाई हो तुम्हारी याद
कौन–सी वह भोर की थी रश्मिलेखा
किसलयों पर टाँकती निःस्वर सुरभि के छन्द
कौन–सी वह रात थी
जब स्वप्न में तुमको न देखा
कौन ऐसा क्षण अभागा था
हुई जब सुधि तुम्हारी प्राण में निस्पन्द
कौन–सा वह सुख
न जो लगता अधूरा बिन तुम्हारे
शब्द गंधस्पर्शरस औ रूप के
वे दृश्य सारे
जो कभी तुमने उतारे औ सँवारे
सभी धुँधले लगे हमको बिन तुम्हारे।''[43]

इसी अंक का एक दृश्य और देखें:

''जो दिया तुमने
कभी वह भर न पाया
एक खालीपन
छाँह–सी अनुवर्तिनी
समभागिनी दुःख की
समर्पण, विश्रंम, व्रीड़ाएँ
हरसिंगारों से महकता दुधमुँहा आँगन
शैशवोचित चपल क्रीड़ाएँ

यह प्रतिष्ठा और प्रतिभा पद
नामसंख्यातीत भीड़ों में
रुपहली ख्याति आदमकद
क्या नहीं पाया
पर तुम्हारे बिना सब कुछ है निरर्थक
सिन्धु पर ज्यों मेघ की छाया।''[44]

विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक' 'इन्द्र' जी के विचार को इस प्रकार व्यक्त करते हैं– ''इन्द्र जी के विचार से नवगीत में लयात्मकता का गुण अपेक्षित है। नवगीत के छन्द में वे तीन–बन्द स्वीकार करते हैं। नवगीत को सुसंगठित, भावगुंफित और संक्षिप्त होना चाहिए। नवगीत को इतिवृत्तात्मकता और वर्णनात्मकता से बचना चाहिए। उसे संकेतिक और व्यंजन प्रधान होना चाहिए। नवगीत की भाषा के सम्बन्ध में उनके विचार इस प्रकार हैं''– नवगीत की भाषा न तो सपाट ही होती है और न नितान्त गजल–गोई वाली। नवगीत में जिस संश्लिष्ट भावानुभूति और रागात्मक संवेदना को व्यक्त करने वाली भाषा की अपेक्षा होती है, वह स्वयं में रूप, रस, गन्ध, स्पर्शमयी नाद–सुष्ठता एवं चित्रात्मकता के गुणों को लिए रहती है। लोक–संस्कृति, लोक–मानस, लोक–भाषा और लोक–लय तथा लोक–मुहावरों और उनसे जुड़े माटी की सौंधी गंध नवगीत के जीवन–संवाहक उपजीव्य हैं।''[45]

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' ने अपने काव्य–लेखन के सम्बन्ध में कहा है – ''जहाँ तक मेरे अपने गीत, नवगीत लेखन का प्रश्न है मैंने परम्परा के सुदृढ़ भूमि पर खड़े रहकर ही प्रयोगशीलता के क्षितिजों तक अपनी सर्जना को आयामित होने का अवकाश दिया है। अपने प्राग्वर्ती एवं समकालीन लेखन में जो कुछ स्वीकार्य और ग्राह्य हो उसे अकुष्ट और उन्मक्त हृदय से स्वायत करना ही श्रेष्ठकर है। ऐसी दशा में मेरे नवगीत क्रमागत परम्परा के पक्षधर होने के साथ–साथ अपने समय के प्रमाणिक दस्तावेज भी हैं।''

'चुप्पियों की पैजनी' 'इन्द्र' जी के नवगीतों का एक अजीबो–गरीब संग्रह है। उर्दू–शब्दावली, उर्दू–संस्कार यहाँ अधिकता से प्रस्तुत किया गया है। भाषा की दृष्टि से इसमें सर्वाधिक नये प्रयोग देखने को मिलते हैं। इसमें कुछ परम्परा, कुछ नया, कुछ अपना, कुछ पराया कहीं अगूढ़, कहीं गूढ़ातिगूढ़ है। गीतों के शीर्षक उर्दू के हैं। जैसे रोशनी की तलाश में, खामोशी चीखती इजलाश में, दहशत के घेरे, गूँजने का सिलसिला, वसीयत आदि। गीतों में कहीं–कहीं पूरी बंदिश ही उर्दू की है। जैसे–

''मुद्दा है

आज की

बहस में

बुलबुल क्यों कैद है, कफस में

इस पर तोहमत यही लगी है

यह नीले फलक की सगी है।''[46]

अगर व्यक्ति के मन में प्रबल इच्छा-शक्ति, आत्म-विश्वास, दृढ़-प्रतिज्ञा, अडिग-आस्था हो तो वो बड़ी से बड़ी मंजिल को आसानी से पा सकता है तभी तो कवि इन्द्र जी कहते हैं-

''मौसम-बेमौसम जो

दिखलाते त्यौरियाँ

हम उन आकाशों पर सुरधनु बन छायेंगे।''[47]

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' का नवीनतम काव्य-संग्रह है- ''पहनी हैं चूड़ियाँ नदी ने'' यह एक प्रतीकात्मक काव्य-संग्रह है। नदी क्या है मनुष्य का जीवन। नदी की चूड़िया है। उसकी विविध रूपी तरंगे और मानव-जीवन की बहुआयामी अनुभूतियाँ क्या है ? नाम में बड़ा प्रखर प्रतीक है, वैसी ही प्रतीकात्मक संग्रह की भावानुभूतियों की अभिव्यक्तियाँ हैं। कवि देवज्ञ, युग-द्रष्टा होता है। इन्द्र जी के ये कविताएँ विगत एक दशक की अनुभूतियाँ हैं। आज से दस वर्ष पूर्व ही उन्होंने देख लिया था कि राजनीति में और राजनीति से प्रभावित साहित्य में क्या गोल-माल होने वाला है।

प्रतीक को नकारना नास्तिक-दर्शन है। जबकि कवि की दृष्टि आस्तिक की दृष्टि है। वह अस्ति में अस्तित्व में आस्था रखता है। कवि नास्तिकता के विरुद्ध, नकारात्मकता के विरुद्ध आवाज उठाता है। देखिए कवि के शब्दों में ही-

''अपनी ही आँख से न देख

औरों की आँखों से भी

दुनिया की चीजों को देख

तालों में बैठे बगुले

दिखते हैं दूध से धुले

रात-दिवस रहते हैं जो

मछली की टोह में तुले।''[48]

कवि देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' जी कहते हैं कि जहाँ केवल अँधेरों का ही वंशज रहते हो वहाँ सच्चाई का गला घोट दिया जाता है, वहाँ निश्चय ही एक दिन प्रलय होता है। महाभारत होता है, गृह-युद्ध होता है। रक्त की नदियाँ बहती हैं। आज राजनेताओं की सभा हो, या साहित्य सभा हो, सभी में छल-फरेब का ही बोल-बाला है। सच को कौन सुनता है। इन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत है इन्हीं की वाणी-

"बहरों, गूंगों, अन्धों की थी वह सभा
तुम्हें मिला क्या बन्धु। वहाँ सच बोलकर
किसने सुनी तुम्हारी बातें ध्यान से
भरी भीड़ में, किस-किस ने जयकार किया
हर कोई हो जहाँ अंधेरों का वंशज
सच को कौन परखता आँखें खोलकर।
माना तुम सूरज-से आस्थावान थे
किन्तु वहाँ थी साख जुगनुओं के दल की
बेची थी सरेआम उन हाटों में
कीचड़ ही खालिस कंचन का मोल कर।"[49]

कवि देवेन्द्र शर्मा इन्द्र अपने इस नवगीत में कहते हैं, मेड़ों की आपसदारी खेतों में बैर बो जाती है, तो क्रांति सो जाती है। यहाँ खेत है जनता का जीवन, मेड़ों की आपसदारी है-राजनीतिक षढ़यंत्र। वर्ण, वर्ग, विरादरी आदि के बीज है-भाषा। जो व्यक्ति के जीवन में बोये गये हैं, मनुष्य इसी को काँटने में व्यस्त रहता है, तभी तो क्रांति की बाते नहीं सोच पाता है। प्रस्तुत है प्रतीक से भरी कवि की वाणी-

"भारी भरकम मंचों पर
आवाजें खोखली मिली
रेती की बुनियादों पर
प्रगति हुई बीस मंजिली
हम जो पहचान लिये थे
भीड़ों के बीच खो गयी।
खून चूसकर खड़ी हुई
ये गिरती सरकारे हैं
होठों पर लोकतंत्र है

हाथों में तलवारे हैं
मखमल की सेज है सजी
फिर कोई क्रांति सो गयी।''[50]

वर्तमान-युग की सुविधाभोगी समाज की मानसिकता की व्यंजना करते हुए कवि का अन्तःमन शासक और प्रजा के बीच घटित सत्य का उजागर करते हुए कहता है-

''जन्म से ही हम प्रशासक तुम प्रजा हो
तुम हमारी कीर्ति को ढोती ध्वजा हो
सिंह के हम वंशधर हैं, तुम अजा हो
हम सुरक्षित तुम्हें बाड़े में रखेंगे
भेड़ियों से
भेड़-सा डरने न देंगे।''[51]

जब भारत गुलाम था तो एक-मात्र उद्देश्य उसे आजाद कराना था। गुलामी की जंजीरों से मुक्ति दिलाना था, पर उस समय जो स्थिति थी, आजादी के इतने वर्षों बाद भी स्थिति सुधरने के बजाय बिगड़ती गयी है, बल्कि यों कहें कि दशा नहीं दुर्दशा हो गयी है, सच होगा। सच्चाई यह है कि हम भारतीयों को ऐसी ही आग से गुजरना है क्यों-कि-

''शेरों की माँदो पर
पहरा है लोमड़ी, सियारों का
चोरों के हिस्से में
आधा है, आधा बटमारों का।
सींग कटे
गिरगिट की दबी हुई
पूँछ हो गये हैं हम।''[52]

वर्तमान युग अतीत के व्यतीत तमाम कालखण्डों से इस अर्थ में भिन्न है कि प्रकृति परिवर्तनशील है और परिवर्तन-चक्र इतने वेग से घूमता है कि दुनिया सिमट कर छोटी प्रतीत होती है। मत-मतांतर से ज्ञात है-मनुष्य का स्वभाव स्थिर रहना कठिन है। विशिष्ट-जनों के लिए भी आत्मानुसंधान कर पाना आकर्षणों के बीच कठिन है-

''यह समय कितना कड़ा है
सामना जिससे पड़ा है,
स्तब्ध सन्नाटा

हवा में
खंख पीपल खड़खड़ाता
सुन रहा हूँ
नींद में कोई
निरन्तर बड़बड़ाता
दृश्य, उफ, कितना भयावह
कील–सा मन में गड़ा है
बाल बिखरे
रक्त रंजित
पीठ कुबड़ी, छिले काँधे
पेट पिचका
नील लोहित
साँकलों ने हाथ बाँधे
रेत पर जल आँकता यह
देश संसद से बड़ा है।''[53]

डॉ. योगेन्द्र गोस्वामी पुस्तक 'जीवन और सृजन' में अपना मंतव्य व्यक्त करते हुए कहते हैं–''यह देखकर आश्चर्य होता है कि वर्तमान में मनीषियों ने काल के इस खरतर प्रवाह में भी आलोक स्तम्भ रचे हैं। श्री देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' अपने युग की विभिन्न विचार-धाराओं और इतिहास की कड़ियों में तालमेल बिठाने की सफल चेष्टा करते रहे हैं। उन्होंने अपने सर्जनशील अप्रतिहत व्यक्तित्व से कुछ नए मानदण्डों की स्थापना द्वारा समय की चुनौतियों का उत्तर दिया है। जब कि बड़े–बड़े ढ़ह चुके हैं। साहित्य क्षेत्र में बौनेपन और अलगाववाद की विभीषिका से ग्रस्त लेखक वर्ग अपने–अपने घरौंदे और संकीर्ण दृष्टि से साहित्यकाश को नाप रहे हैं, तब देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' एक व्यापक समन्वयी वृत्ति अपनाकर विरोधों में सामंजस्य स्थापित करते दिखाई देते हैं। वे वादों को बनते–मिटते देखते रहे हैं। वे अपने युग–संघर्ष के समीक्षक–साक्षी रहे हैं।

छन्द अभियोजना

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के नवगीतों की छान्दस संरचना अपनी विशिष्ट महत्ता को ज्ञापित करती है। वैसे तो नवगीत किसी विशिष्ट तथा स्थापित छन्द–विधा का आग्रही

नहीं रहा, किन्तु नवगीतकारों ने विषय और भावों के अनुरूप संवेदनाओं के स्तर पर गीतों के सम्प्रेषण को सहज बनाने के लिए भावानुकूल छन्दों की रचनायें की हैं। अधिकतर इन्द्र जी के छन्द अभिनव, प्रयोगवादी तथा एक विशिष्ट भंगिमा के साथ अनुबंधित हुए हैं। ये छंद विषय को समग्रतः आत्मसात करने में सक्षम भी हुए और सार्थक भी।

वैसे तो हर छन्द काव्यानुशासित छन्द-विधान के अन्तर्गत ही आकार ग्रहण करता है, किन्तु फिर भी इन्द्र जी ने इस अनुशासन का कोई भी पूर्वाग्रह सोच के नहीं रखा। किसी नदी की मंथर-मंथर प्रवाहित धारा की तरह लय और राग से बँधे हुए उनके छंद बड़ी ही सहजता और सरलता के साथ अग्रसर हुए हैं। कहीं-कहीं उन्होंने परम्परित चतुष्पदियों का भी सृजन किया है, जिनमें उनके कथ्य बड़े ही संतुलित ढंग से संयोजित हुए हैं।

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' परम्परित काव्यानुशासन के मर्मज्ञ विद्वान हैं। उन्होंने मात्रिक तथा वर्णिक छन्दों के अनेक रूपों के यथावत तथा तोड़-मरोड़ के भी प्रयोग किये हैं। काव्यानुशासन का उनका आचार्यत्व उनके दोहा-संग्रहों में देखा जा सकता है। उनके लगभग दस हजार दोहे सम्पादित हो चुके हैं, जिनके अनेक संग्रह भी ग्रंथ रूप में सामने आ चुके हैं। इसी तरह उनके ग़ज़ल संग्रह भी उनकी काव्यानुशासित समझ को उजागर करते हैं।

अंत में कह सकते हैं कि गीतों से लेकर नवगीतों तक की रस-धारा में कवि का एक विशिष्ट ओजस व्यक्तित्व मुखर होकर सामने आया है, जो अपने समय का पूर्ण-रूप से प्रतिनिधित्व करता है। अपनी अध्ययन यात्रा में मैंने यह अनुभव किया है कि अन्य गीतकारों की तुलना में इन्द्र जी के छन्द-प्रयोग अपेक्षाकृत विरल और वैविध्यपूर्ण रहे हैं। नवगीत के संदर्भ में कथ्यांकन की उन्होंने कोई सीमा निबद्ध नहीं की है। उनके नवगीत दलित वर्ग की झुग्गी-झोपड़ियों से चलते हैं, निम्न मध्यम वर्गीय परिवारों के गली मुहल्ले से गुजरते हुए, राज-पथ पर टहलते हुए नज़र आते हैं। इनके नवगीत संवेदनाओं से संलग्न होकर सम्पूर्ण आत्मीयता के साथ हमारी उँगली पकड़कर हमारे साथ उठते-बैठते हैं, रोते-बतियाते हैं और हमारे बहुत करीब आकर जैसे हमारी अपनी ही बातों को उद्घोषित करते हुए दृष्टिगत होते हैं।

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के गीतों और नवगीतों में जहाँ एक ओर भक्ति और दर्शन की गहन आस्थाओं की समर्पित भावांजलियाँ हैं, तो दूसरी ओर घर गृहस्थी के झमेले, दमन, शोषण, अन्याय, अनीति और अत्याचारों के क्रंदन हैं, अभावग्रस्त जिन्दगी की मर्मान्तक

पुकारें हैं तो दूसरी ओर सांस्कृतिक आस्थाओं की अट्टालिकाओं के शिखर भी प्रतिभाषित हैं। आम-आदमी से लेकर खास आदमी तक उनके नवगीत जाते हैं, बहू, बेटियाँ, पिता, माँ, बहन आदि अनेक आत्मीय संबंधों की संवेद्य आस्थायें उनके नवगीतों में समाविष्ट हैं। प्रकृति के मनोरम दृश्यांकनों में कवि के प्रातिभ उद्गार सर्वत्र ही मनमोहक रहे हैं।

इस तरह गीत-नवगीत के संदर्भ में देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' का विशिष्ट प्रदान उल्लेखनीय रहा है और उनके छान्दस अनुबंधन और उनकी विरलता भी ध्यानाकर्षक रही है। उनके नवगीतों में अनेकानेक छान्दस अनुबन्धनों का अनुभास किया जा सकता है, ये छान्दस अनुबन्धन संस्कृत के छन्द-शास्त्र की पारिभाषिक मर्यादा की प्राचीरों को ध्यान में रखकर नहीं किए गए, किन्तु भावावेशित क्षणों में सोच और विचारों के विविध कथ्यों के अनुरूप ही इन छन्दों का सृजन हुआ है जो स्वाभाविक प्रेरणा पर आधारित हैं। इनके छन्दों के कुछेक रूप द्रष्टव्य हैं-

''पगदंडी के दोनों ओर
नीम सीसम की
घनी छाँव की झीलो में।
यह मन डूबा है।''[54]

''ज्योत्सना की उर्मिल सितावरण
नक्षत्र-माल हीरकाभरण।।
घर मन्द-मन्द श्लथ कम्प चरण उन्मदना।
विद्युत के लघु नीरव नूपुर।''[55]

''होली के रंग भरे
भूलि सुधि-से उभरे,
फागुनी आकाश तले रतनारे बादल।''[56]

''जो कुछ हूँ, जैसा हूँ, प्रस्तुत हूँ
मौलिक हूँ, अनुकरण नहीं हूँ।
इस जीवित क्षण का मैं साक्षी हूँ
मैं कल का संस्मरण नहीं हूँ।।''[57]

वैसे तो छान्दस संरचना के संदर्भ में उन्होंने स्पष्ट कर ही दिया है कि जो कुछ उन्होंने गढ़ा है वह उनका अपना है, किन्तु फिर भी छायावादी छान्दस अभियोजना की प्रकारान्तर से उन पर छाप अवश्य अनुभव की जा सकती है। विशेषरूप से पंत और निराला की काव्य-धारा का संरचनात्मक गठन उनपर हावी रहा है। प्रसाद और निराला का स्पर्श उनकी छन्द-योजना में अनुभव किया जा सकता है। उपर्युक्त तमाम उद्धरण इसी संदर्भ में ध्यातव्य है।

कुछ अभिनव प्रयोग भी उन्होंने किये हैं, जो भावानुकूल या विषयानुकूल प्रस्तुति को बल देने वाले हैं, ऐसे ही कुछ छान्दस प्रयोग द्रष्टव्य हैं-

''दर्द के नीले ध्रुवान्तों पर कहीं,
वर्फ के मानिन्द वे क्षण जम गए।
अब किसे इस मौन में।
आवाज दे।
सिलसिले बहते हुए।
सब थम गए।''[58]

''क्षितिज की गोलाइयों पर
उभर आए
कुहासे की कञ्चुकी से झाँकते ये
पवन-वाही नील कंठ कपोल
चेतना की अलस मौन उपत्यका में
जग उठे अज्ञात
सुधियों के चपल खद्योत।।
फिर किसी के
अलक्तकरंजित पगों के
नूपुरों की मृदु क्वणन से
खिल उठा
यह गन्धमादन
प्राण का निस्पन्द हरसिंगार।''[52]

''सामने यह
रामगिरि आश्रम
दूर वे
अलकापुरी से दिन
फूल-सा चुनते रहे जिनकों।
झर गए
वे आँजुरी-से दिन।''[60]

अन्त में कहा जा सकता है कि देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' कहीं से भी अनुबंधित रचनाकार नहीं हैं। कहीं भी कुछ भी दुराग्रह या पूर्वाग्रह नहीं है। चाहे विषय का चयन हो, काव्य की प्रस्तुति की प्रश्न हो, छंदानुबन्धन की अभियोजना के कवि देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' स्वच्छन्द-रूप से अपने गीतों की तरंगों के साथ बहते हैं, तैरते हैं और डूब भी जाते हैं। उन्होंने किनारे पर बैठकर हवा खाना का शौक नहीं पाला। धारा में बहने का सुख सँजोते रहे हैं। और धारा के प्रवाह में ही स्विच्छित रूप से अग्रसर होते रहे हैं।

??

संदर्भ सूची

1. देवेन्द्र शर्मा इन्द्र 'पथरीले शोर' में पृ. 23
2. वही वही वही
3. वही वही वही
4. वही वही पृ. 27
5. वही वही पृ. 27
6. वही वही पृ. 25
7. वही वही पृ. 25
8. वही वही पृ. 25
9. वही वही पृ. 25
10. वही वही पृ. 25
11. वही वही पृ. 30
12. वही वही पृ. 35
13. वही वही पृ. 35
14. वही वही पृ. 42
15. वही वही पृ. 43
16. वही वही पृ. 43
17. वही वही पृ. 50
18. वही वही पृ. 41
19. वही वही पृ. 41
20. वही वही पृ. 42
21. वही वही पृ. 20
22. वही वही पृ. 21
23. वही वही पृ. 9
24. वही वही पृ. 14
25. वही वही पृ. 15
26. वही वही पृ. 54
27. वही 'दिन पाटलिपुत्र हुए' पृ. 31
28. वही वही पृ. 37

29. वही वही पृ. 40
30. वही वही पृ. 59
31. वही वही पृ. 65
32. वही 'पथरीले शोर में' पृ. 10
33. वही दिन पाटलिपुत्र हुए पृ. 55
34. वही वही पृ. 29
35. देवेन्द्र शर्मा इन्द्र चुप्पियों की पैजनी पृ. 59
36. वही आँखों में रेत प्यास पृ. 75
37. वही चुप्पियों की पैजनी पृ. 58
38. देवेन्द्र शर्मा इन्द्र व्यक्ति और अभिव्यक्ति पृ. 48
39. वही दिन पाटलिपुत्र हुए पृ. 64
40. वही वही पृ. 78
41. वही आँखों में रेत प्यास पृ. 30
42. वही वही पृ. 47
43. वही कुहरे की प्रत्यश्चा पृ. 13
44. वही वही पृ. 14
45. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' जीवन और सृजन
46. वही चुप्पियों की पैजनी पृ. 34
47. वही वही पृ. 40
48. वही पहनी हैं चूड़ियाँ नदी ने पृ. 65
49. वही वही पृ. 22
50. वही वही पृ. 27
51. वही वही पृ. 39
52. ही वही पृ. 67
53. वही अनन्तिमा पृ. 27
54. वही पगदन्डी और सड़कें
55. वही पथरीले शोर में पृ. 43
56. वही वही पृ. 23
57. वही वही पृ. 9

58. वही आँखों में रेत प्यास
59. वही पथरीले शोर में पृ. 54
60. वही अनन्तिमा पृ. 60